तर्कपटुता और बुद्धिमत्ता हमलोगोंसे बहुत बढ़ी चढ़ी हुई थी और उन्होंने हमारे उत्कर्षके लिये जो पथ बतलाया है वही हम लोगोंके लिये सच्चे सुखकी प्राप्तिका यथार्थ मार्ग है। ऐसे विचार रखनेवाले बन्धुओंको समझाकर अपने प्राचीन आदर्शकी ओर आकर्षित करनेकी विशेष आवश्यकता है और इसीसे सबका मङ्गल है।

प्रिय बन्धुगण! विचार करनेपर आपको यह विदित हो जायगा कि पाश्चात्य सभ्यता वास्तवमें हमारे देश, धर्म, धन, सुख और हमारी जाति तथा आयुका विनाश करनेवाली है, इस सभ्यताके संसर्गसे ही आज हमारा देश अपने चिरकालीन धर्म-पथसे विचलित होकर अधोगति की ओर जा रहा है। इसीसे आज हमारी धर्मप्राण जाति अनार्योचित कायरता और भोग-परायणताकी ओर अग्रसर होती हुई दिखाई दे रही है। इस प्रकार जो सभ्यता हमारे सांसारिक सुखोंका भी विनाश कर रही है उससे सच्चे सुखकी आशा करना तो विडम्बना मात्र है।

जातिका नाश होता है, अपने वेष–भाषा, खानपान और आचारके त्याग देनेसे। जो जाति इन चारोंकी रक्षा करती हुई अपने आदर्शसे स्खलित नहीं होती उसका अस्तित्व नाश होना बड़ा कठिन होता है। अतएव हमें अपने प्राचीन ऋषि मुनियोंद्वारा आचरित रहन-सहन, वेश-भूषा और स्वभाव-

सभ्यताका ही अनुकरण करना चाहिये। स्वधर्मका त्याग करना किसी भी अवस्थामें उचित नहीं। भगवान्‌ने श्रीगीताजीमें कहा है:—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

(अ०।३।३५)

'अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरेके धर्मसे गुण रहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें मरना (भी) कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।'

मुसलमानोंके शासनके समय जब हिन्दुओंने उनके रहन-सहन और स्वभाव-सभ्यताकी नकल करना आरम्भ किया, तभीसे हिन्दूजाति और हिन्दूधर्मका ह्रास होने लगा। देखते देखते आठ करोड़ हिन्दूभाई मुसलमानोंके रूपमें बदल गये। जो लोग गो ब्राह्मण और देवमन्दिरोंके रक्षक थे, वे ही उलटे उन सबके शत्रु बन गये। यह सब मुसलमानी सभ्यताके और उनके आचार विचारोंके अनुकरण करनेका ही दुष्परिणाम है।

इस समय अंगरेजोंका राज्य है। सब ओर अंगरेजी शिक्षाका प्रचार हो रहा है। अंगरेजोंका संसर्ग दिनोंदिन बढ़ रहा है। इसी कारण हमारी जातिमें आज अंगरेजी वेश, भाषा, खानपान और आचार विचारोंका बड़े जोरके साथ विस्तार हो

रहा है। इसीके साथ साथ हिन्दूधर्म और हिन्दूजातिका ह्रास तथा ईसाई धर्मकी वृद्धि भी हो रही है। यह दुर्दशा हमारे सामने प्रत्यक्ष है। इसमें किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं। दूसरोंके अनुकरणमें अपने जातीय भावोंको छोड़नेका यही परिणाम हुआ करता है।

अतएव सबको यह बात निश्चितरूपसे समझ लेनी चाहिये कि पाश्चात्य सभ्यता और उसका अनुकरण हमारे लिये किसी प्रकार भी हितकर नहीं है। इससे हमारे धर्ममय भावोंका विनाश होता है और हमें केवल भौतिक उन्नतिके पीछे भटककर सच्चे लाभसे वञ्चित रहनेको बाध्य होना पड़ता है।

सच्चा सुख

विचार करनेपर प्रत्येक बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ सकता है कि मनुष्य जन्मकी प्राप्तिसे कोई अत्यन्त ही उत्तम लाभ होना चाहिए। खाना, पीना, सोना, मैथुन करना आदि सांसारिक भोग-जनित सुख तो पशु कीटादि तक नीच योनियों-में भी मिल सकते हैं। यदि मनुष्य-जीवनकी आयु भी इसी सुखकी प्राप्तिमें चली गई तो मनुष्य-जन्म पाकर हमने क्या किया? मनुष्य जन्मका परम ध्येय तो उस अनुपमेय और सच्चे सुखको प्राप्त करना है, जिसके समान कोई दूसरा सुख है ही नहीं। वह सुख है 'श्रीपरमात्माकी प्राप्ति।'

साधनमें क्यों नहीं लगते ।

इतना होनेपर भी अधिकांश लोग केवल धन, स्त्री और पुत्रादि विषयजन्य सुखको ही परमसुख मानकर उसीमें मोहित रहते हैं । असली सुखके लिये यत्न करनेवाले कर्तव्यपरायण पुरुष तो कोई विरले ही निकलते हैं ।

श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

(गीता अ० ७ । ३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरेको तत्त्वसे जानता है अर्थात् यथार्थ मर्मसे जानता है ।'

भगवान्‌के कथनानुसार आजकल भी जो कुछ थोड़े बहुत सज्जन इस सच्चे सुखको प्राप्त करना चाहते हैं, उनमेंसे भी विरले ही आखिरी मंजिल तक पहुंचते हैं । अधिकांश साधक तो थोड़ासा साधनकरके ही रुक जाते हैं । वे अपनेको अधिक उन्नत स्थितिमें नहीं ले जा सकते । मेरी समझसे इसमें निम्न-लिखित कारण हो सकते हैं:—

(१) संसारमें इस सिद्धान्तके सुयोग्य प्रचारक कम हैं। क्योंकि इसके प्रचारक त्यागी, विद्वान्, सदाचारी, परिश्रमी और सच्चे महापुरुष ही हो सकते हैं।

(२) साधकगण थोड़ीसी उन्नतिमें ही अपनेको कृतकृत्य समझकर अधिक साधनकी आवश्यकता ही नहीं समझते।

(३) कुछ साधक थोड़ासा साधनकरके उकता जाते हैं। इस साधनसे अपनी विशेष उन्नति नहीं समझकर वे 'किंकर्तव्यविमूढ़' हो जाते हैं।

(४) सच्चे सुखमें लोगोंकी श्रद्धा ही बहुत कम होती है, कारण विषय-सुखोंकी भांति इसके साधनमें पहले ही सुख नहीं दीखता। इसीसे तत्परताका अभाव रहता है।

(५) कुछ लोग इस सुखको सम्पादन करना अपनी शक्तिसे बाहरकी बात समझते हैं, इसलिये वे निराश हो रहते हैं।

इसके सिवाय और भी कई कारण बतलाये जा सकते हैं परन्तु इन सबमें सच्चा कारण केवल अज्ञानता और अकर्मण्यता ही है। अतएव मनुष्यको सावधान होकर उत्साहके साथ कर्तव्यपरायण रहना चाहिये।

सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपाय।

श्रुति कहती है:—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति

(कठ० १। ३। १४)

'उठो, (साधनके लिये प्रयत्नशील होओ) अज्ञान निद्रासे जागो एवं श्रेष्ठ विद्वान् जिस मार्गको क्षुरकी तेज धारके समान दुर्गम बताते हैं, उसको महापुरुषोंके पास जाकर समझो !'

अतएव इस भगवत्-साक्षात्कारतारूप परमकल्याण और परमसुखकी प्राप्तिके साधनमें किंचित् भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। यही मनुष्य जन्मका परमकर्तव्य है, यही सबसे बड़ा और सच्चा सुख है। इसी सुखकी महिमा बतलाते हुए भगवान् कहते हैं:—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥

(गीता ६।२१)

'इन्द्रियोंसे अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिकेद्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है। उसको जिस अवस्थामें अनुभव करता है और जिस अवस्थामें स्थित हुआ यह योगी भगवत् स्वरूपसे चलायमान नहीं होता है'

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६।२२)

'और परमेश्वरकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्-

प्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता है।'

> तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
> स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥
>
> (गीता ६ । २३)

'और जो दुःखरूप संसारके संयोगसे रहित है तथा जिसका नाम योग है उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए चित्तसे अर्थात् तत्पर हुए चित्तसे निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।'

यद्यपि इस सच्चे सुखकी प्राप्तिका उपाय कुछ कठिन है परन्तु असाध्य नहीं है। श्रीपरमात्माकी शरण ग्रहण करनेसे तो कठिन होनेपर भी वह सर्वथा सरल, सुखसाध्य और अत्यन्त सहज हो जाता है। श्रीगीताजीमें भगवान् स्वयं प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं—

> मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
> स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
> किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
> अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥
>
> (अ० ९ । ३२,३३)

'हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य (और) शूद्रादि तथा पापयोनिवाले भी जो कोई होवें, वे भी मेरे शरण होकर तो परमगतिको

ही प्राप्त होते हैं। फिर क्या कहना है कि पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन (परमगतिको) प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्य शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

अतएव साधकको चाहिये कि वह परमात्मापर दृढ़ विश्वास करके उसकी शरण ग्रहणकर अपनी उन्नतिके प्रतिबन्धक कारणोंको निम्नलिखित उपायोंसे दूर करनेकी चेष्टा करे।

(१) साधककी धारणामें उसे संसारमें जो सबसे उत्तम सदाचारी त्यागी, ज्ञानी महात्मा दीखें, उन्हींके पास जाकर उनकी आज्ञानुसार साधनमें तत्परताके साथ लग जाय। उनके वचनोंमें पूर्ण विश्वास रक्खे, उनके समीप जाकर फिर 'किंकर्तव्यविमूढ़' न रहे, अपनी बुद्धिको प्रधानता न दे, उसका बतलाया हुआ साधन यदि ठीक समझमें न आवे तो नम्रता पूर्वक पूछकर अपना समाधान करले और साधनमें लगने पर भी यदि कुछ समय तक प्रत्यक्ष सुखकी प्रतीति न हो तो भी परिणाममें होनेवाले परम हित पर विश्वास-करके उनकी आज्ञाका पालन करनेसे कदापि विमुख न हो।

श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता अ० ४। ३४)

'भलीप्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भावसे किये हुए प्रश्नद्वारा उस ज्ञानको जान। वे मर्मको जानने-वाले ज्ञानीजन तुझे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।'

(२) साधकको यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि मुझे यह साधन किसी दिन छोड़ देना है। उसको यही समझना चाहिये कि यह साधन ही मेरा परम धन परम कर्तव्य, परम अमृत, परम सुख और मेरे प्राणोंका परम आधार है। जो लोग यह समझते हैं कि परमात्माका ज्ञान होनेके बाद हमें साधनकी क्या आवश्यकता है, वे भूल करते हैं। जिस साधनद्वारा अन्तःकरणको परम शान्ति प्राप्त हुई है, भला, वह उसे क्योंकर छोड़ सकता है? परमात्माकी प्राप्ति होनेके पश्चात् उस महापुरुषकी स्थिति देखकर तो दुराचारी मनुष्योंकी भी साधनमें प्रवृत्ति हो जाया करती है। जिन्हें देखकर साधनहीन जन भी साधनमें लगजाते हैं उनकी अपनी तो बात ही कौनसी है? इतना होनेपर भी जो पुरुष थोड़ीसी उन्नतिमें ही अपनेको कृतकृत्य मान लेते हैं, वे बड़ी भूलमें रहते हैं। इस भूलसे साधनमें बड़ा विघ्न होता है। यही भूल साधकका अधःपतन करनेवाली होती है। अतएव इससे सदा बचना चाहिये।

(३) साधकको इस बातका दृढ़ विश्वास रखना चाहिये, कि

कर्तव्यपरायण, भगवत्-शरणागत पुरुषके लिये कोई भी कार्य दुःसाध्य नहीं है। वह बड़ेसे बड़ा काम भी सहज-हीमें कर सकता है। यह शक्ति वास्तवमें प्रत्येक मनुष्यमें है। अपनी शक्तिका अभाव मानना मानों अपने आपको नीचे गिराना है। उत्साही पुरुषके लिये कष्टसाध्य कार्य भी सुखसाध्य हो जाता है।

(४) प्रत्येक साधकको अपनी परीक्षा अपने आप करते रहना चाहिये। सूक्ष्मदृष्टिसे विचार कर देखनेपर अपने छिपे हुए दोष भी प्रत्यक्ष दीखने लग जाते हैं। साधकको देखना चाहिये कि मेरा मन अपने अधीन शुद्ध, एकाग्र और विषयों-से विरक्त हुआ या नहीं। कारण जबतक मन और इन्द्रियों पर पूरा अधिकार नहीं हो जाता तबतक परमात्माकी प्राप्ति बहुत दूर है।

भगवान् कहते हैं किः—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

(गीता अ० ६। ३६)

'मनको वशमें न करनेवाले पुरुषद्वारा योग दुष्प्राप्य है अर्थात् प्राप्त होना कठिन है और स्वाधीन मनवाले प्रयत्नशील पुरुषद्वारा साधन करनेसे प्राप्त होना सहज है यह मेरा मत है।'

अतएव साधकको सबसे पहले मनको अपने अधीन, शुद्ध

और एकाग्र बनाना चाहिये * । इसके लिए शास्त्रोंमें प्रधानतः दो उपाय बतलाये गये हैं ।

(१) अभ्यास और (२) वैराग्य ।

श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

(गीता अ० ६ । ३५)

'हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चञ्चल और कठिनतासे वशमें होनेवाला है परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! अभ्यास अर्थात् स्थितिके लिये बारम्बार यत्नकरनेसे और वैराग्यसे (यह) वशमें होता है ।'

इसीप्रकार पातञ्जल योगदर्शनमें भी कहा है:—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

(योग० १। १२)

'अभ्यास और वैराग्यसे उन (चित्तवृत्तियोंका) निरोध होता है ।'

अभ्यास और वैराग्यकी विस्तृत व्याख्या तो यथा क्रम उक्त ग्रन्थोंमें ही देखनी चाहिये परन्तु भगवान्‌ने अभ्यासका स्वरूप मुख्यतया इसप्रकार बतलाया है ।

* 'मनको वशमें करनेके उपाय ' नामक पुस्तकमें मनको रोकनेके बहुत-से उपाय बतलाये हैं ।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(गीता अ० ६ । २६)

'यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस जिस कारणसे सांसारिक पदार्थोंमें विचरता है उस उससे रोककर (बारम्बार) परमात्मामें ही निरोध करे ।'

वैराग्यके सम्बन्धमें भगवान्‌ने कहा है ।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

(गीता ५ । २२)

'जो यह इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःखके ही हेतु हैं और आदि अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं । इसलिये हे अर्जुन ! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

इसप्रकार अभ्यास वैराग्यसे मनको शुद्ध, अपने अधीन, एकाग्र और वैराग्य-सम्पन्न बनाकर भगवान्‌के स्वरूपमें निरन्तर अचल स्थिर करदेनेके लिये ध्यानका साधन करना चाहिये ।

जैसे श्रीभगवान्‌ने कहा है:—

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

(गीता ६ । २४-२५)

'संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको निःशेषतासे अर्थात् वासना और आसक्तिसहित त्यागकर और मनकेद्वारा इन्द्रियोंके समुदायको सब ओरसे ही अच्छी प्रकार वशमें करके क्रम क्रमसे (अभ्यास करता हुआ) उपरामताको प्राप्त होवे (तथा) धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मनको परमात्मामें स्थित-करके परमात्माके सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।'

अभ्यास और वैराग्यके प्रभावसे मनके शुद्ध, स्वाधीन, एकाग्र और विरक्त हो जानेपर तो उसे परमात्माके चिन्तनमें लगाना परम सुगम हो ही जाता है परन्तु उक्त दोनों उपायोंको पूर्णतया काममें न लाकरके भी यदि मनुष्य केवल परमात्माकी शरण ग्रहणकर उसके नाम-जप और स्वरूप-चिन्तनमें तत्पर हो जाय तो इस प्रकारके ध्यानसे ही सब कुछ हो सकता है। साधकका मन शीघ्र ही शुद्ध,एकाग्र और उसके अधीन हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

महर्षि पतञ्जलिने भी शीघ्रातिशीघ्र समाधि लगनेका उपाय बतलाते हुए कहा है:—

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा।"

(योगद० १ । २३)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य तो मनके निरोध करनेके उपाय हैं ही। जो साधक इन उपायोंको जितना अधिक काममें लाता है, उतना ही शीघ्र उसका मन निरुद्ध होता है। परन्तु ईश्वर-प्रणिधानसे भी मन बहुत ही शीघ्र समाधिस्थ हो सकता है।

इससे यह माना जासकता है कि जप, तप, व्रत, दान, लोकसेवा, सत्सङ्ग और शास्त्रोंका मनन आदि समस्त साधन इसी ध्यानके लिये ही बतलाये और किये जाते हैं।

अतएव सच्चेसुखकी प्राप्तिका साक्षात्, सरल और सबसे सुलभ उपाय परमात्माके स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना ही है। इसीको शास्त्रकारोंने ध्यान, स्मरण और निदिध्यासन आदि नामोंसे कहा है। कर्मयोग और सांख्ययोग आदि सभी साधनोंमें परमात्माका ध्यान प्रधान है।

साधनकालमें अधिकारी भेदसे ध्यानके साधनोंमें भी अनेक भेद होते हैं। सभी मनुष्योंकी रुचि एक प्रकारके साधनमें नहीं हुआ करती। एक ही गन्तव्य स्थानपर पहुंचनेके लिये अनेक मार्ग हुआ करते हैं इसी प्रकार फलरूपमें एक ही परम वस्तुकी प्राप्ति होनेपर भी साधनके प्रकारोंमें अन्तर रहता है। कोई एकत्वभावसे सच्चिदानन्दघन परमात्माके निराकाररूपका ध्यान करते हैं तो कोई स्वामी-सेवक भावसे सर्वव्यापी परमेश्वर-का चिन्तन करते हैं। कोई भगवान् विश्वरूपका तो कोई

चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपका, कोई मुरली मनोहर श्रीकृष्णरूपका तो कोई मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामरूपका और कोई कल्याणमय श्रीशिवरूपका ही ध्यान करते हैं।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥

(गीता अ० ९। १५)

अतएव जिस साधककी परमात्माके जिसरूपमें अधिक प्रीति और श्रद्धा हो, वह निरन्तर उसीका चिन्तन किया करे। परिणाम सबका एक ही है, परिणामके सम्बन्धमें किंचित् भी संशय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

साधकोंकी प्रायः दो श्रेणियां होती हैं। एक अभेदरूपसे अर्थात् एकत्वभावसे परमात्माकी उपासना करनेवालोंकी और दूसरी स्वामी सेवक भावसे भक्ति करनेवालोंकी। इनमेंसे अभेद-रूपसे उपासना करनेवालोंके लिये तो केवल एक शुद्ध सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्माके स्वरूपमें ही निरन्तर एकत्व-भावसे स्थित रहना ध्यानका सर्वोत्तम साधन है। परन्तु दूसरे, स्वामी सेवक भावसे उपासना करनेवाले भक्तोंके लिये शास्त्रोंमें ध्यानके बहुत प्रकार बतलाये गये हैं।

ध्यान करनेकी पद्धति नहीं जाननेके कारण ध्यान ठीक नहीं होता, साधक चाहता तो है परमात्माका ध्यानकरना,

परन्तु उसके ध्यान होता है जगत्‌का। यह शिकायत प्रायः देखी और सुनी जाती है। इसलिये परमात्मामें मन जोड़नेकी जो विधियां हैं, उन्हें जाननेकी बड़ी आवश्यकता है। शास्त्र-कारोंने अनेक प्रकारसे ध्यानकी विधियोंके बतलानेकी चेष्टा की है। उनमेंसे कुछ दिग्दर्शन यहां संक्षेपमें किया जाता है।

यों तो परमात्माका चिन्तन निरन्तर उठते, बैठते, चलते, खाते, पीते, सोते, बोलते और सब तरहके काम करते हुए हर समय ही करना चाहिये परन्तु साधक खास तौरपर जब ध्यानके निमित्तसे बैठे, उस समय तो गौणरूपसे भी उसे अपने अन्तः-करणमें सांसारिक सङ्कल्पोंको नहीं उठने देना चाहिये तथा एकान्त और शुद्ध देशमें बैठकर ध्यानका साधन आरम्भ कर देना चाहिये। श्रीगीताजीमें कहा है:—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

(६। ११-१२)

'शुद्ध भूमिमें कुशा, मृगछाला और वस्त्र हैं उपरोपरि जिसके, ऐसे अपने आसनको न अति ऊंचा और न अति नीचा स्थिर स्थापन करके और उस आसनपर बैठकर तथा मनको

एकाग्रकरके चित्त और इन्द्रियोंकी क्रियाओं को वशमें किये हुए, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे।'

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

(गी० ६।१३)

'काया, शिर और ग्रीवाको समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ होकर अपनी नासिकाके अग्रभागको देखकर* अन्य दिशाओंको न देखता हुआ परमेश्वरका ध्यान करे।'

ध्यान करनेवाले साधकको यह बात विशेषरूपसे जान रखनी चाहिये कि जबतक अपने शरीरका और संसारका ज्ञान रहे तबतक ध्यानके साथ नाम जपका अभ्यास अवश्य करता रहे। नामजपका सहारा नहीं रहनेपर बहुत समयतक नामीके स्वरूपमें मन नहीं ठहरता। निद्रा, आलस्य और अन्यान्य सांसारिक स्फुरणाएं विघ्नरूपसे आकर मनको घेर लेती है। नामीको याद दिलाने का प्रधान आधार नाम ही है। नाम नामीके रूपको कभी भूलने नहीं देता। नामसे ध्यानमें पूर्ण सहायता मिलती है। अतएव ध्यान करते समय जबतक ध्येयमें संपूर्णरूपसे तल्लीनता न हो जाय, तबतक नामजप कभी नहीं

---

*इसमें दृष्टिको नासिकाके अग्रभाग पर रखनेके लिये कहा गया है परन्तु जिन लोगोंको आंखे बन्द करके ध्यान करनेका अभ्यास हो, वे आंखे बन्द करके ही कर सकते हैं इसमें कोई हानि नहीं है।

छोड़ना चाहिये। यह तो ध्यानके संबन्धमें साधारण बातें हुई। अब ध्यानकी कुछ विधियां लिखी जाती हैं।

अभेदोपासनाके अनुसार ध्यानकी विधि।

एकत्वभावसे परमात्माकी उपासना करनेवाले साधकको चाहिये कि वह उपर्युक्त प्रकारसे आसनपर बैठकर मनमें रहनेवाले सम्पूर्ण संकल्पोंका त्यागकरके इसप्रकार भावना करे।

(१) एक आनन्दघन ज्ञानस्वरूप पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण है। उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, उस ब्रह्मका ज्ञान भी उस ब्रह्मको ही है। वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसका कभी अभाव नहीं होता। इसीलिये उसे सत्य, सनातन और नित्य कहते हैं, वह सीमारहित, अपार और अनन्त है। मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, द्रष्टा, दृश्य, दर्शन आदि जो कुछ भी है वह सभी उस ब्रह्ममें आरोपित और ब्रह्म स्वरूप ही है। वास्तवमें एक पूर्णब्रह्म परमात्माके सिवाय अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण संसार स्वप्नके सदृश उस परमात्मामें कल्पित है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

'ब्रह्म, सत्य, चेतन और अनन्त है, इस श्रुतिके अनुसार वह आनन्दघन, सत्यस्वरूप, बोधस्वरूप परमात्मा है, 'बोध'

उससे भिन्न कोई उसका गुण या उसकी कोई उपाधि या शक्तिविशेष नहीं है। इसीप्रकार 'सत्' भी उससे कोई भिन्न गुण नहीं है। वह सदासे है और सदा ही रहता है, इसलिये लोक और वेदमें उसे 'सत्' कहते हैं, वास्तवमें तो वह परमात्मा सत् और असत् दोनोंसे परे हैं। 'न सत्तन्नासदुच्यते।'
(गीता १३।१२)

इसप्रकार अन्तःकरणमें ब्रह्मके अचिन्त्यस्वरूपकी दृढ़ भावना करके जपके स्थानमें वारम्वार निम्नलिखित प्रकारसे परमात्माके विशेषणोंकी मन ही मन भावना और उनका उच्चारण करता रहे। वास्तवमें ब्रह्म नामरूपसे परे है परन्तु उसके आनन्द-स्वरूपकी स्फूर्तिके लिये इन विशेषणोंकी कल्पना है। अतएव साधक चित्तकी समस्त वृत्तियोंको आनन्दरूप ब्रह्ममें तल्लीन करता हुआ 'पूर्ण-आनन्द' 'अपार आनन्द' 'शान्त आनन्द' 'घन-आनन्द' 'वोधस्वरूप-आनन्द' 'ज्ञानस्वरूप-आनन्द' 'परमआनन्द' 'नित्य आनन्द' 'सत्-आनन्द' 'चेतन-आनन्द' 'आनन्द ही आनन्द' 'एक आनन्द ही आनन्द' आदि ब्रह्मके विशेषणोंका चिन्तन करता हुआ इस भावनाको उत्तरोत्तर दृढ़ करता रहे कि एक 'आनन्द' के सिवाय और कुछ भी नहीं है। इसके साथ ही वह अपने मनको वड़ी तेजीसे उस आनन्दमय ब्रह्ममें तन्मय करता हुआ उन सम्पूर्ण विशेषणों-को उस आनन्दमय परमात्मासे अभिन्न समझता रहे। इसप्रकार

मनन करते करते जब मनके समस्त सङ्कल्प उस परमात्मामें विलीन हो जाते हैं, जब एक बोधस्वरूप, आनन्दघन परमात्माके सिवाय अन्य किसीके भी अस्तित्वका सङ्कल्प मनमें नहीं रहता है तब उसकी स्थिति उस आनन्दमय अचिन्त्य परमात्मामें निश्चलताके साथ होती है। इस प्रकारसे ध्यानका नित्यनियम-पूर्वक अभ्यास करते करते साधन परिपक्व होनेपर जब साधकके ज्ञानमें उसकी अपनी तथा इस संसारकी सत्ता ब्रह्मसे भिन्न नहीं रहती। जब ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय सभी कुछ एक विज्ञानानन्द-घन ब्रह्मस्वरूप बन जाते हैं, तब वह कृतार्थ हो जाता है। फिर साधक, साधना और साध्य सभी अभिन्न, सभी एक आनन्द-स्वरूप हो जाते हैं, फिर उसकी वह स्थिति सदाके लिये वैसी ही बनी रहती हैं। चलते फिरते, उठते, बैठते तथा अन्य सम्पूर्ण कार्योंके यथाविधि और यथासमय होते हुए भी उसकी स्थितिमें किंचित् भी अन्तर नहीं पड़ता। भगवान्ने कहा है:—

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

(गीता ४। २०)

'जो पुरुष, सांसारिक आश्रयसे रहित सदा परमानन्द परमात्मामें तृप्त है, वह कर्मोंके फल और सङ्ग अर्थात् कर्तृत्व अभिमानको त्यागकर कर्ममें अच्छी प्रकार वर्तता हुआ भी कुछ नहीं करता है।'

वास्तवमें वह किसी भी समय संसारको या अपनेको ब्रह्मसे अलग नहीं देखता। इसीलिये उसका पुनः कभी जन्म नहीं होता। वह सदाके लिये मुक्त हो जाता है। गीतामें कहा है:—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

(५ । १७)

'तद्रूप है बुद्धि जिनकी (तथा) तद्रूप है मन जिनका (और) उस सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही है निरन्तर एकीभावसे स्थिति जिनकी, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पाप रहित हुए अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।' यही उपर्युक्त ध्यानका फल है।

अभेदोपासनाके ध्यानकी दूसरी युक्ति ।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमात्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥

(कठ० उ० ३ । १३)

'बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह वाणी आदि सम्पूर्ण इन्द्रियोंका मनमें निरोध करे, मनका बुद्धिमें निरोध करे, बुद्धिका महत्तत्त्वमें अर्थात् समष्टि बुद्धिमें निरोध करे और उस समष्टिबुद्धिका निरोध शान्तात्मा परमात्मामें करे।'

एकान्त स्थानमें बैठकर दशों इन्द्रियोंके विषयोंको उनके

द्वारा ग्रहण न करना अर्थात् सम्पूर्ण इन्द्रियोंके व्यापारको रोककर मनके द्वारा केवल परमात्माके स्वरूप का वारम्वार मनन करते रहना ही 'वाणी आदि इन्द्रियोंका मनमें निरोध' करना है। इसके बाद मनन किये हुए परमात्माके स्वरूपके विषयमें जितने भी विकल्प हैं, उन सबको छोड़कर एक निश्चयपर स्थित होकर चित्तका शान्त हो जाना याने अन्तः-करणमें किसी भी चञ्चलात्मक वृत्तिका किंचित् भी अस्तित्व न रहकर एकमात्र विज्ञानका प्रकाशित हो जाना 'मनका बुद्धिमें निरोध' करना है। ध्यानकी इस प्रकारकी स्थितिमें ध्याताको अपना और ध्येय वस्तु परमात्माका बोध रहता है परन्तु इसके बाद जब उस सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्मके स्वरूपका निश्चय करनेवाली बुद्धि वृत्तिकी स्वतंत्र सत्ता भी समष्टिज्ञानमें तन्मय हो जाती है। जब ध्याता, ध्यान, और ध्येयका समस्त भेद मिटकर केवल एक ज्ञानस्वरूप पूर्णब्रह्म परमात्माके स्वरूपका ही बोध रह जाता है। इसी अवस्थाको 'बुद्धिका समष्टि बुद्धिमें निरोध' करना कहते हैं।

इसके अनन्तर एक और अनिर्वचनीय स्थिति होती है, जिसमें ध्याता, ध्यान, और ध्येयका भिन्न संस्कारमात्र भी शेष नहीं रहता। केवल एक शुद्ध, बोधस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही रह जाता है, उसके सिवाय अन्य किसीकी भी

भिन्न सत्ता किसीप्रकारसे भी नहीं रहती। इसीका नाम समष्टि बुद्धिका शान्तात्मामें निरोध करना है।

इसीको निर्बीज समाधि, शुद्धब्रह्मकी प्राप्ति या कैवल्य पदकी प्राप्ति कहते हैं। यही अन्तिम स्थिति है। वाणी इस अवस्थाका वर्णन नहीं कर सकती, मन इसका मनन नहीं कर सकता। क्योंकि यह मन, वाणी और बुद्धिके परेका विषय है। यही मोक्ष है।

इस स्थितिको प्राप्त करके पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। उसके लिये फिर कोई भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। श्रीगीताजीमें कहा है:—

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥
(३। १७)

'जो मनुष्य आत्मामें ही प्रीतिवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मामें ही सन्तुष्ट होवे, उसके लिये कोई भी कर्तव्य नहीं है।'

अभेदोपासनाके अनुसार परमात्माका ध्यान करनेके और भी बहुतसे प्रकार हैं परन्तु लेखका आकार बढ़ जानेके कारण और नहीं लिखे जाते हैं। सबका आशय प्रायः एक ही है। एकत्वभावसे उपासना करनेवालेके लिये श्रीगीताजीके इस श्लोकको निरन्तर स्मरण रखना अत्यन्त लाभप्रद है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
(अ० १३ । १५)

'(वह परमात्मा) चराचर सब भूतोंके बाहर तथा भीतर परिपूर्ण है, चर अचररूप भी (वही) है, वह सूक्ष्म होनेसे अविज्ञेय* है तथा अति समीपमें † और दूरमें ‡ भी वही स्थित है।'

अतएव जिनकी अभेदोपासनामें रुचि हो, उन साधकोंको उपर्युक्त प्रकारके साधनमें शीघ्र ही तत्पर होना चाहिये।

विश्वरूप परमात्माके ध्यानकी विधि।

एकान्त स्थानमें आंखे बन्द करके बैठनेपर भी यदि इस मायामय संसारकी कल्पना साधकके हृदयसे दूर न हो तो उसे इस प्रकारकी भावना करनी चाहियेः—

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यो इन तीनों लोकोंमें जो कुछ भी देखने, सुनने और मनन करनेमें आता है सो सब साक्षात् श्रीपरमात्माका ही स्वरूप है। वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही

---

*जैसे सूर्यकी किरणोंमें स्थित हुआ जल सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता है, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होनेसे साधारण मनुष्योंके जाननेमें नहीं आता।

† वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होनेसे अत्यन्त समीप है।

‡ श्रद्धारहित अज्ञानी पुरुषोंके लिये न जाननेके कारण बहुत दूर है।

अपनी मायाशक्तिसे विश्वरूपमें प्रकट हुए हैं। जैसे श्रीगीताजीमें कहा है:—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(अ० १३। १३)

'वह सब ओरसे हाथ पैरवाला, सब ओरसे नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओरसे श्रोत्रवाला है। क्योंकि वह सब संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।'*

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥

(अ० १०। ४२)

'अथवा हे अर्जुन! इस बहुत जाननेसे तुझे क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत्को (अपनी योगमायाके) एक अंशमात्रसे धारण करके स्थित हूं। इसलिये मुझको ही तत्त्वसे जानना चाहिये।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(अ० १०। ३९)

'हे अर्जुन! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है वह भी

---

* आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथिवीका कारणरूप होनेसे उनको व्याप्त करके स्थित है वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होनेसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त करके स्थित है।

मैं ही हूं क्योंकि ऐसा वह चर अचर कोई भी भूत नहीं है कि जो मुझसे रहित हो, इसलिये सब कुछ मेरा ही स्वरूप है।'

इस प्रकार बारम्बार मनन करके सम्पूर्ण संसारको तत्त्वसे श्रीपरमात्माका स्वरूप समझकर परमात्माके निश्चित रूपमें मनको निश्चल करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनकी चञ्चलताका सहजमें ही नाश हो जाता है। फिर मन जहां जाता है वहीं उसे वह परमात्मा दीखता है। एक परमात्माके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं भासता। जैसे जलसे बने हुए अनेक प्रकारके बर्फके खिलौनोंको जो तत्त्वसे जलस्वरूप समझलेता है उसे फिर उनके जल होनेमें किसी प्रकारका भ्रम नहीं रहता, मन शान्त और संशयरहित हो जाता है, उसे सभी खिलौने प्रत्यक्ष जल-स्वरूप दीखने लगते हैं। इसीतरह उपर्युक्त प्रकारसे परमात्माका ध्यान करनेवाले साधकको भी संपूर्ण विश्व परमात्मस्वरूप दीखने लगता है। उसकी भावनामें जगत्‌रूप किसी वस्तुका अस्तित्व ही नहीं रहता। चञ्चल चित्तको परमात्मामें लगानेका यह भी एक सहज उपाय है।

श्रीविष्णुके चतुर्भुजरूपका ध्यान करनेकी विधि।

एकान्त स्थानमें पूर्वोक्त प्रकारसे आसनपर बैठकर आंखें मूंद ले और आनन्दमें मग्न होकर अपने उस परमप्रेमीके मिलन-की तीव्र लालसासे ध्यानका साधन आरम्भ करे।

मन्दिरोंमें भगवान्‌की मूर्तिका दर्शन कर, भगवान्‌के चित्रों-

का अवलोकन कर, सन्त महात्माओंकेद्वारा सुनकर या सौभाग्य-वश स्वप्नमें प्रभुके दर्शन कर भगवान्के जैसे साकार रूपको बुद्धि मानती हो, याने भगवान्का साकाररूप साधकके समक्ष-में जैसा आया हो, उसीकी भावना करके ध्यान करना चाहिये। साधारणतः भगवान्की मूर्तिके ध्यानकी भावना इस प्रकार की जा सकती है।

(१) भूमिसे करीव सवा हाथकी ऊंचाईपर आकाशमें अपने सामने ही भगवान् विराजमान हैं। भगवान्के अतिशय सुन्दर चरणारविन्द नीलमणिके ढेरके समान चमकते हुए अनन्त सूर्योंके सदृश प्रकाशित होरहे हैं। चमकीले नखोंसे युक्त कोमल कोमल अंगुलियां हैं और उनपर स्वर्णके रत्नजड़ित नूपुर शोभित होरहे हैं। भगवान्के जैसे चरणकमल हैं वैसे ही उनके जानु और जङ्घा आदि अंग भी नीलमणिके ढेरकी भांति पीताम्बरके अन्दरसे चमक रहे हैं। अहो! अत्यन्त सुन्दर चार लम्बी लम्बी भुजाएं शोभा दे रही हैं। ऊपरकी दोनों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, और नीचेकी दोनों भुजाओंमें गदा और पद्म, विराज-मान हैं। चारों भुजाओंमें केयूर और कड़े आदि एकसे एक सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं। अहो! अत्यन्त विशाल और परम सुन्दर भगवान्का वक्षःस्थल है जिसके मध्यमें श्रीलक्ष्मीजीका और भृगुलताका चिह्न अंकित हो रहा है। नीलकमलके समान सुन्दर वर्णवाली भगवान्की ग्रीवा अत्यन्त सुन्दर है और वह

रत्नजड़ित हार, कौस्तुभमणि तथा अनेक प्रकारके मोतियोंकी, स्वर्णकी भांति भांतिके सुन्दर दिव्य-गन्ध पुष्पोंकी और वैजयन्ती मालाओंसे सुशोभित हैं। सुन्दर चिबुक (ठुड्डी) लाल लाल ओष्ठ और मनोहर नुकीली नासिका है, जिसके अग्रभागमें, दिव्य मोती लटक रहा है। भगवान्‌के दोनों नेत्र कमलपत्रके समान विशाल और नीलकमलके सदृश खिले हुए हैं। कानोंमें रत्नमण्डित सुन्दर मकराकृत कुंडल और ललाटपर श्रीधारण तिलक तथा शीशपर मनोहर मणिमुक्तामय किरीट मुकुट शोभायमान हो रहा है। अहो! भगवान्‌का अतुलनीय मनोहर मुखारविन्द पूर्णिमाके चन्द्रकी गुलाईको लजाता हुआ मनको हरण कर रहा है। मुखमण्डलके चारों ओर सूर्यके सदृश किरणें देदीप्यमान हैं जिनके प्रकाशसे भगवान्‌के मुकुटादि सम्पूर्ण आभूषणोंके रत्न सहस्र सहस्र गुण अधिक चमक रहे हैं। अहो! आज मैं धन्य हूं! धन्य हूं! जो मन्द मन्द हंसते हुए परमानन्द-मूर्त्ति हरि भगवान्‌का ध्यान कर रहा हूं।

इसप्रकार भावना करते करते जब भगवान्‌का स्वरूप भलीभांति स्थित हो जाय, तब प्रेममें विह्वल होकर साधकको भगवान्‌के उस मनमोहन स्वरूपमें चित्तको स्थिर कर देना चाहिये। ध्यानका अभ्यास करते करते जब साधकको अपना और संसारका एवं ध्यानका भी ज्ञान नहीं रहता, केवल एक

मनमोहन भगवान्‌का ही ज्ञान रह जाता है तब साधककी भगवान्‌के स्वरूपमें समाधि हो जाती है। ऐसा होनेपर साधक तत्काल ही भगवान्‌के वास्तविक तत्त्वको जान जाता है और तब भगवान् उसके प्रेमवश हो साक्षात् साकार रूपमें प्रकट होकर उसे अपने दर्शनसे कृतार्थ करनेको बाध्य होते हैं। श्रीभगवान्‌ने कहा भी है:—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ ५४॥
(गीता ११।५४)

'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्य भक्ति करके तो इसप्रकार चतुर्भुज स्वरूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकी भावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूं।'

इसप्रकार भगवान्‌के साक्षात् दर्शन हो जानेके बाद वह भक्त कृतकृत्य हो जाता है। उसके सम्पूर्ण अवगुण नष्ट हो जाते हैं और वह पूर्ण महात्मा बन जाता है। फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता! श्रीगीताजीमें कहा है।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥
(८।१५)

'परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखके स्थानरूप क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होते।'

दूसरी विधि

(२) अपने हृदयाकाशमें शेषनागकी शय्यापर शयन किये हुए श्रीविष्णुभगवान्‌का चिन्तन करते करते निम्नलिखित रूपसे मन ही मन उनके स्वरूप और गुणोंकी भावना करते हुए उन्हें वारम्बार नमस्कार करना चाहिये।

जिनकी आकृति अतिशय शान्त है, जो शेषजीकी शय्यापर शयन किये हुए हैं, जिनके नाभिमें कमल है, जो देवताओंके भी ईश्वर और सम्पूर्ण जगत्‌के आधार हैं, जो आकाशके सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नीलमेघके समान जिनका मनोहर नीलवर्ण है, अत्यन्त सुन्दर जिनके संपूर्ण अंग हैं, जो योगियों द्वारा ध्यान करके प्राप्त किये जाते हैं जो संपूर्ण लोकोंके स्वामी हैं, जो जन्म मरणरूप भयका नाश करनेवाले हैं, ऐसे श्रीलक्ष्मीपति कमलनेत्र भगवान् विष्णुको मैं अवनत मस्तक होकर प्रणाम करता हूं।*

---

* बन्दौं विष्णु विश्वाधार।
लोकपति, सुरपति, रमापति, शुभग-शान्ताकार।
कमल-लोचन, कलुषहर, कल्याण-पद-दातार॥

असंख्य सूर्योंके समान जिनका प्रकाश है, अनन्त चन्द्रमाओंके समान जिनकी शीतलता है, करोड़ों अग्नियोंके समान जिनका तेज है, असंख्य मरुद्गणोंके समान जिनका पराक्रम है, अनन्त इन्द्रोंके समान जिनका ऐश्वर्य है, करोड़ों कामदेवोंके समान जिनकी सुन्दरता है, असंख्य पृथ्वीतलोंके समान जिनमें क्षमा है, करोड़ों समुद्रोंके समान जिनमें गम्भीरता है, जिनकी किसी प्रकार भी कोई उपमा नहीं दे सकता, वेद और शास्त्रोंने भी जिनके स्वरूपकी केवल मात्र कल्पना ही की है, पार किसीने भी नहीं पाया, ऐसे उस अनुपमेय श्रीहरि भगवान्‌को मेरा वारम्वार नमस्कार है।

जो सच्चिदानन्दमय श्रीविष्णुभगवान् मन्द मन्द मुसकुरा रहे हैं, जिनके समस्त अङ्गोंपर रोम रोममें पसीने की बूंदे चमकती हुई परम शोभा दे रही है। ऐसे पतितपावन श्रीहरि भगवान्‌को मेरा वारम्वार नमस्कार है। इस तरह अभ्यास करते करते जब चित्त शान्त, निर्मल और प्रसन्न हो जाय तब अपने मनको उस

नील–नीरदवर्ण, नीरज–नाभ, नभ अनुहार।
भृगुलता–कौस्तुभ–सुशोभित–हृदय–मुक्ताहार॥
शङ्ख–चक्र–गदाकमलयुतभुज विभूषित चार।
पीतपट–राजत–मनोहर, अङ्ग अङ्ग उदार॥
शेष–शय्या–शयित योगी–ध्यानगम्य अपार।
हरण भव–भय दुःखमय अशरण–शरण अविकार॥
('पत्रपुष्प' से उद्धृत)

शेषशायी भगवान् नारायणदेवके ध्यानमें अचल कर देना चाहिये

परमात्माके साकार और निराकार स्वरूपका ध्यान करनेके और भी बहुतसे साधन हैं, यहां केवल कुछ दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। इस विषयका विशेष ज्ञान तो श्रीपरमात्मा और महात्माओंकी शरण ग्रहणकर साधनमें तत्पर होनेसे ही प्राप्त होता है। साकारके ध्यानमें यहां केवल श्रीविष्णु-भगवान्‌के दो प्रकार बतलाये गये हैं। साधकगण इसीप्रकार अपनी अपनी श्रद्धा और प्रीतिके अनुसार श्रीराम, कृष्ण, और शिव आदि भगवान्‌के अन्यान्य स्वरूपोंका भी ध्यान कर सकते हैं। फल सबका एक ही है।

एकान्त देशसे उठनेके बाद व्यवहारकालमें भी चलते-फिरते, उठते-बैठते सब समय अपने इष्टदेवके नामका जप और स्वरूपका चिन्तन उसीप्रकार करते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जीवनके अमूल्य समयका एक क्षण भी श्रीभगवान्‌के स्मरणसे रहित नहीं जाना चाहिये। जीवनमें सदासर्वदा जैसा अभ्यास होता है अन्तमें भी उसीकी स्मृति रहती है और अन्तकालकी स्मृतिके अनुसार ही उसकी गति होती है। इसीसे भगवान्‌ने श्रीगीताजीमें कहा है:—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(अ० ८। ७)

'इसलिये (हे अर्जुन ! तूं) सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर। और युद्ध भी कर इसप्रकार मेरेमें अर्पण किये हुए मन बुद्धिसे युक्त हुआ (तूं) निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।'

इसप्रकार सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म भगवान्के ध्यानसे साधकका हृदय पवित्र और निर्मल होता चला जाता है। संपूर्ण चिन्ताओंका विनाश होकर अन्तःकरणमें एक विलक्षण शान्तिकी स्थापना होती है। चित्त एकाग्र और अपने अधीन हो जाता है। साधनकी वृद्धिसे ज्यों ज्यों अन्तःकरणकी निर्मलता और एकाग्रता बढ़ती है त्यों ही त्यों सच्चे आनन्दकी भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। सच्चे सुखका जबसाधकको जरासा भी अनुभव मिलजाता है तब उसे उस सुखके सामने त्रिलोकीके राज्यका सुख भी अत्यन्त तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगता है। इस स्थितिमें साधारण भोगजनित मिथ्या सुखोंकी तो वह बात ही नहीं पूछता। बल्कि भोगविलास तो उससाधकको नाशवान्, क्षणिक और प्रत्यक्ष दुःखरूप प्रतीत होने लगते हैं। इसप्रकारके साधनसे साधककी वृत्तियां बहुत ही शीघ्र संसारसे उपराम होकर भगवान्के स्वरूपमें अटल और स्थिर हो जाती है। साधक उस सच्चे और अपार आनन्दको सदाके लिये प्राप्त होकर तृप्त हो जाता है। उसके दुःखोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। यही मनुष्य जीवनका चरम लक्ष्य है।

प्रिय पाठकगण ! हमें इस बातका दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि मनुष्यजीवनका परम कर्तव्य सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म सर्वशक्तिमान् आनन्दकन्द भगवान्‌का साक्षात् करना ही है। यही इस लोक और परलोकमें सबसे महान्, नित्य और सत्य सुख है। इसको छोड़कर अन्यान्य जितने भी सांसारिक सुख प्रतीत होते हैं वे वास्तवमें सुख नहीं हैं। केवलमोहसे उनमें सुखकी मिथ्या प्रतीति होती है। वास्तवमें वे सब दुःख ही हैं। योगदर्शनमें कहा है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥

(२।१५)

संसारके समस्त विषयजन्य सुख परिणाम, ताप और सांसारिक दुःखोंसे मिले हुए होने, तथा सात्त्विक, राजस और तामस गुणोंकी वृत्तियोंके परस्पर विरोधी होनेके कारण विवेकी पुरुषोंके लिये दुःखमय ही हैं।

अतएव इन क्षणिक, नाशवान् और कृत्रिम सुखोंको सर्वथा परित्यागकर हमें अत्यन्त शीघ्र तत्पर होकर उस सच्चे सुखस्वरूप परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें उत्साह और दृढ़तापूर्वक लग जाना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीताका सूक्ष्मविषय

१—यह अपने ढंगकी नयी चीज है गीताका प्रायः हर श्लोकका भाव इसमें अलग अलग लिखा गया है। यदि इसे गीताका सारांश कहैं तो अनुचित न होगा । गीताको भलीभांति समझनेमें इससे बड़ी सहायता मिलती है। गीताको भली-भांति समझनेमें यह पुस्तक सहायक होगी। मूल्य ≁)।

स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी

स्त्रियोंके लिये बड़ी उपयोगी। उनको क्या करना और किससे कैसा बर्ताव रखना समझाया गया है। =)

❋ फुटकर पुस्तकें ❋

श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश—सचित्र	...	≁)
त्यागसे भगवत्प्राप्ति—सचित्र	...	≁)
ब्रह्मचर्य	....	≁)
श्रीहरेरामभजनपुस्तक	...	)॥।
श्रीसीतारामभजनपुस्तक	...	)॥
बलिवैश्वदेवविधि	...	)॥
संध्या	....	)॥
पातञ्जलयोगदर्शन मूल	....	)।
गजलगीता		आधा पैसा

इन सभी पुस्तकोंमें शुद्ध छपाईकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है। कागज अच्छे रखे गये हैं और दाम लागतके लगभग हैं।

कल्याणका भगवन्नामाङ्क

११० पेज,

सादे और रंगीन ४१ चित्र।

बड़े बड़े सन्तों और विद्वानोंके

महत्वपूर्ण लेख।

तीर्थों, मन्दिरों और पाठशालाओंमें बांटनेलायक

अपूर्व वस्तु।

मूल्य ११) प्रति

व्यवस्थापक 'कल्याण'

गीताप्रेस, गोरखपुर।